

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

हिमाद्रि - हृदय - प्रकरण

दिनं तृतीयमद्याभूत्प्रवासस्य हिमालये ।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कृतनित्यक्रियास्ततः ॥ १ ॥
नारदस्य तु नेतृत्वे सज्जाः प्रवसितुं समे ।
पुनीतानां स्थलानां च दर्शनैः सह ते पुनः ॥ २ ॥
ज्ञानेनास्येतिहासस्य पौरुषोद्देश्ययोरपि ।
हृदयंगानि तथ्यानि कर्तुं सौविध्यमाययुः ॥ ३ ॥
ईदृशो नैव सम्प्राप्तो योगस्त्वानंददायकः ।
पूर्वमेतेन क्वाप्यत्र भ्रमता मंडलेन तु ॥ ४ ॥
प्रश्नोत्तर विधिश्चात्र चलतामेव शोभनः ।
हृद्योऽभूच्च नृणां मार्गश्रमखेदं न ते गताः ॥ ५ ॥
मनोविनोदयन्तस्ते लक्ष्यस्थानानि चाञ्जसा ।
तरन्त्येव नवं दृश्यं पश्यन्तश्चोत्सुका भृशम् ॥ ६ ॥
मंडलस्थः सदस्यः स ऋषिश्रेष्ठ उवाच च ।
कणादः सहसा तत्र नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ७ ॥

टीका—आज हिमालय परिवार में प्रवास का तीसरा दिन था। ब्रह्ममुहूर्त में मुनि-मनीषियों की मंडली उठकर नित्यकर्म से निवृत्त हुई। महाभाग नारद जी के नेतृत्व में सभी प्रवास के लिए तत्पर हो गए। पुनीत स्थलों को देखने के साथ-साथ उसका इतिहास जानने एवं उद्देश्य-पुरुषार्थ का स्वरूप समझते चलने से तथ्यों को हृदयंगम करने में बड़ी सहायता मिल रही थी। ऐसा आनंददायक सुयोग इस भ्रमणशील मंडली को इससे पूर्व कभी भी मिला नहीं था। चलते-चलते अनेक प्रश्न पूछने और उनके समाधान प्राप्त करने की पद्धति सभी को उत्तम लगी। इससे मार्ग का श्रम किसी को खलता नहीं था। हँसते-हँसते मंजिल पार होती रहती थी। नए दृश्यों को देखते हुए वह और भी उत्सुक हो रहे थे। मंडली के एक सदस्य ऋषिवर कणाद ने मुनि श्रेष्ठ नारद जी से पूछा ॥ १-७ ॥

कणाद उवाच—
देवान्यत्रापि सन्त्येव शोभाः प्रकृतिजास्तथा ।
जलवायुकृतं चास्ति वातावरणमुत्तमम् ॥ ८ ॥
तदुपेक्ष्य कथं सर्व आत्मवेत्तार एव च ।
शीताधिक्यमथाप्यत्र विद्यमानं पदे पदे ॥ ९ ॥
अवरोहमथारोहमसौविध्यकरं परम् ।
अविचार्यैव वासं स्वं निश्चिन्वन्ति कथं त्विह ॥ १० ॥
त्यक्त्वा सामाजिकं चात्र गुहावासकरं कथम् ।
एकान्तं जीवनं सर्वे वाञ्छन्त्येते महर्षयः ॥ ११ ॥
बोद्धव्यतां कृपया चैतद्रहस्यं भवताद्भुतम् ।

आकर्ण्य प्रश्नमेतत्तु जगाद नारदो मुनिः ॥ १२ ॥

टीका—कणाद ने कहा, हे देव संसार में अन्यत्र भी अनेक प्राकृतिक शोभा और अनुकूल जलवायु वाले स्थान हैं। उनकी उपेक्षा करके आत्मवेत्ता उत्तराखंड को ही अपनी साधनाओं के लिए क्यों उपयुक्त समझते हैं। शीत अत्यधिक होने तथा पद-पद पर चढ़ने-उतरने की असुविधा को ध्यान न देकर वे यहीं क्यों अपना निवास क्षेत्र चुनते हैं? समूह में न रहकर एकाकी गुहा जीवन किसलिए पसंद हैं, इसका रहस्य समझाने का अनुग्रह करें। इस प्रश्न को सुनकर महर्षि नारद ने कहा ॥ ९-१२ ॥

नारद उवाच—

यथैवान्तर्ग्रहदानप्रदानाभ्यां भुवस्त्विदम् ।
उत्तरस्थं ध्रुवस्थानं भृशं संवेद्यतां गतम् ॥ १३ ॥
चुंबकक्षमता तत्र विशाला विद्यते तथा ।
पृथिव्यां विपुलान्यत्र ब्रह्मांडोदरगानि तु ॥ १४ ॥
अनुदानान्यनेनैव पथा मध्यंगतेन तु ।
अवतरन्ति समग्रं च यान्ति नूनं धरातलम् ॥ १५ ॥
व्यापकानां तथा ब्रह्मचेतनानां तथैव तु ।
तत्स्थानमनुदानानां वसुधाचुम्बिनां ध्रुवम् ॥ १६ ॥
यद् वदन्ति बुधा दिव्यं हिमाद्रेर्हृदयं त्विदम् ।
उत्तराखंडशीर्षस्थं सुमेरोस्तु समीपगम् ॥ १७ ॥
सर्वसाधारणागम्यं निवसन्ति च यत्र ते ।
सूक्ष्मकायानुगा देवमानवा एव केवलम् ॥ १८ ॥
ऋषयः स्थूलकायास्तु सर्वे ते च मनीषिणः ।
अध्यात्मध्रुवशक्तेश्च भागे तत्र प्रभाविते ॥ १९ ॥
वसन्तीह सदा येषु क्षेत्रेष्वत्रोत्तमेषु तु ।
जीवनं यापितुं नूनं विद्यते साधनानि तु ॥ २० ॥

टीका—नारद जी ने कहा, जिस प्रकार अंतर्ग्रही आदान-प्रदान के लिए पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव अत्यधिक संवेदनशील है, वहाँ की चुंबकीय क्षमता बढ़ी-चढ़ी है तथा पृथ्वी पर अगणित ब्रह्मांडीय अनुदान इसी क्षेत्र के माध्यम से अवतरित होते और फिर वे समूचे धरातल पर प्रवाह की तरह फैलते हैं, उसी प्रकार व्यापक ब्रह्मचेतना के पृथ्वी पर अवतरित होने वाले अनुदानों का केंद्र वह स्थान है जिसे विद्वान लोग हिमालय का हृदय कहते हैं। यह उत्तराखंड के शीर्ष सुमेरु शिखर के समीपवर्ती क्षेत्र में है एवं सर्वसाधारण के लिए अगम्य है। वहाँ सूक्ष्म शरीर प्रधान देवमानव ही निवास करते हैं। स्थूल शरीरधारी ऋषि-मनीषी, उसे अध्यात्म ध्रुव के प्रभाव क्षेत्र में उन स्थानों पर रहते हैं, जहाँ जीवनयापन के साधन हैं ॥ १३-२० ॥

६.१२ प्रज्ञोपनिषद्

तादृशं विद्यते नूनमुत्तराखंडमुत्तमम् ।
 स्थानं वातावृतौ यत्र प्रभावोऽध्यात्मसंभवः ॥ २१ ॥
 विद्यतेऽधिक एवान्यस्थानेभ्यश्चाञ्जसाऽस्ति सः ।
 ब्रह्मांडव्यापिचैतन्यधारा - संपर्क - संभवः ॥ २२ ॥
 देवशक्तिभिरादानप्रदानस्थितयेऽधिकम् ।
 उपयुक्तं मतं क्षेत्रमिदं श्रेष्ठं मनीषिभिः ॥ २३ ॥
 शीतमुख्येषु भागेषु शक्तिः सा जीवनानुगा ।
 लभ्यतेऽधिक - मात्रायां तत्रत्या अतएव तु ॥ २४ ॥
 जना अपेक्षया स्वस्थतराः सौन्दर्यशालिनः ।
 भवन्त्येषां स्वभावश्च कोमलो भवति स्वतः ॥ २५ ॥
 आहाराय विहाराय सामग्री विपुलास्ति च ।
 वर्ततेऽत्र मनःस्थैर्यशान्तिभ्यामनुकूलता ॥ २६ ॥
 निवासिनश्च तेऽत्रत्या जीवन्त्यधिकमुत्तमाः ।
 एतादृशे कृताः सर्वैर्वातावरण उत्तमे ॥ २७ ॥
 प्रयासा लब्धुमध्यात्मविभूतीः सफलाः सदा ।
 जायन्तेऽधिकमात्रायां शीघ्रं चापि न संशयः ॥ २८ ॥
 टीका—उत्तराखंड वैसा ही क्षेत्र है। यहाँ के वातावरण में
 अन्यत्र की तुलना में अध्यात्म प्रभाव अधिक है। ब्रह्मांडव्यापी
 ब्रह्मचेतना की अनेकानेक धाराओं में से यहाँ रहकर सरलतापूर्वक
 संपर्क साधा जा सकता है। दैवी शक्तियों के साथ आदान-
 प्रदान चलाने की दृष्टि से यह श्रेष्ठ एवं अधिक उपयुक्त
 पाया गया है। शीतप्रधान क्षेत्रों में जीवनीशक्ति की मात्रा
 अधिक पायी जाती है। वहाँ के निवासी अपेक्षाकृत अधिक
 स्वस्थ और सुंदर होते हैं। स्वभाव भी मृदुल होता है। आहार-
 विहार के लिए उपयुक्त सामग्री का बाहुल्य रहता है। मन की
 स्थिरता और शांति के लिए यहाँ अधिक अनुकूलता रहती
 है। यहाँ के श्रेष्ठ निवासी अधिक दिन जीते हैं। ऐसे वातावरण
 में अध्यात्मिक विभूतियाँ प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयास
 अपेक्षाकृत अधिक जल्दी और अधिक मात्रा में सफल होते
 हैं ॥ २१-२८ ॥

सेवार्थ साधनार्थं च मत आवश्यकस्त्वयम् ।
 जनसंपर्क एकान्तोऽपेक्ष्य एवात्मानः सदा ॥ २९ ॥
 परिष्काराय तस्मै च मनोनिग्रह हेतवे ।
 विनैतन्नैव सिद्धिं ते लभन्ते साधका इह ॥ ३० ॥
 वातावृतौ सदेदृश्यां सर्वे वैज्ञानिकास्तथा ।
 साहित्यिका महान्तस्ते कवयो योगिनोऽपि च ॥ ३१ ॥
 जना उच्चस्ताराः स्वेषु विषयेष्विच्छितेष्वलम् ।
 चित्तं स्थिरयितुं शक्ता भूतीर्लब्धुं परा अपि ॥ ३२ ॥
 महान्तः पुरुषा यत्र घटनाश्च महत्त्वगाः ।
 सम्पद्यन्ते तु यत्रैव प्रभावस्तत्र शिष्यते ॥ ३३ ॥
 उच्चश्चेत्स प्रभावस्तु चिरं तिष्ठति सर्वतः ।
 क्षेत्रेऽस्मिन् विद्यते नूनं वार्ता हिमगिरावपि ॥ ३४ ॥

लीलाभूमिरिदं क्षेत्रं देवानां च तपस्विनाम् ।
 ऋषीणां महतां नृणां हिमाद्रेर्निकटस्थितम् ॥ ३५ ॥
 पुरातनः प्रभावः स विद्यते चाधुनापि तु ।
 क्षेत्रेऽस्मिन् बीजमुप्तं तदुर्वरायां फलेद् भुवि ॥ ३६ ॥
 क्षेत्रेऽस्मिन् विहिता शीघ्रं साधना सा फलत्यलम् ।
 ऐतिह्यस्मरणादेव प्रेरणा प्राप्यतेऽञ्जसा ॥ ३७ ॥
 टीका—सेवा-साधना के लिए जनसंपर्क आवश्यक है,
 किंतु मनोनिग्रह और आत्मपरिष्कार के लिए अंतर्मुखी होना
 पड़ता है, उसके लिए एकांत की आवश्यकता पड़ती है,
 उसके बिना साधक सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसे
 ही वातावरण में वैज्ञानिक, साहित्यकार, कवि, योगीस्तर के
 महत्वपूर्ण व्यक्ति अभीष्ट विषयों पर अधिक ध्यान एकाग्र
 कर सकते हैं और अधिक गहराई में उतरकर अधिक मूल्यवान्
 विभूतियाँ हस्तगत कर सकते हैं। महान् व्यक्ति जहाँ जन्म लेते
 हैं और महान् घटनाएँ होती हैं, वहाँ अपना प्रभाव छोड़ती हैं
 और यदि वह उच्चस्तरीय है, तो चिरकाल तक बना रहता है,
 वह बात इस हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है। हिमालय देवताओं,
 ऋषियों, तपस्वियों, महामानवों की लीला भूमि रही है। उस
 क्षेत्र में वह पुरातन प्रभाव अभी भी विद्यमान है। उर्वरभूमि में
 बोया हुआ बीज जल्दी और अधिक फलित होता है। इस
 क्षेत्र में बोई हुई साधना भी अधिक फलवती होती देखी गई
 है। ऐतिहासिक घटनाओं के स्मरण से भी अनायास ही
 तद्विषयक प्रेरणाएँ मिलती हैं ॥ २९-३७ ॥

एतत्क्षेत्रे समुत्पन्ना वनस्पतय उत्तमाः ।
 सन्ति चैवं विधास्तस्य वातावरणमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
 क्षेत्रस्यैतत्प्रभावेण भावितं सेवनं विना ।
 प्रभावयति सर्वाश्च साधकां स्तान्निरन्तरम् ॥ ३९ ॥
 वायुस्तत्स्पर्शनिर्वातः शरीरं मन एव च ।
 अंतरुल्लासयत्याशु यदाश्रित्य मनोबलम् ॥ ४० ॥
 तिष्ठत्युच्चगतं स्याच्च भावनोत्कृष्टताऽधिका ।
 सहायका भवन्त्येवं स्थितयोऽध्यात्मतोदये ॥ ४१ ॥
 उत्तराखंडसंभूता नद्य आरोग्यवर्द्धकम् ।
 चित्तसंतुलनोद्गारि वहन्त्यादाय वारि च ॥ ४२ ॥
 शिखरस्था हिमानीयं प्रवात्यादित्यतेजसा ।
 क्षेत्रे पाषाणयुक्ते चाक्षुष्णं वैशिष्ट्यमस्य तु ॥ ४३ ॥
 हिमजलस्य सदा तिष्ठत्यग्रे नागरिके स्थले ।
 दूषितं जलमेतच्च शुद्धतां नो जहाति तु ॥ ४४ ॥
 अत्रत्यानां नदीनां तु निर्झराणां च विद्यते ।
 जलं सहायकं शक्तेर्वृद्धौ च मलशोधने ॥ ४५ ॥
 टीका—इस क्षेत्र में उगने वाली वनस्पतियाँ भी ऐसी हैं,
 जिनका सेवन किए बिना भी उस क्षेत्र का वातावरण बहुत
 प्रभावी रहता है तथा समस्त साधकों को प्रभावित करता है।

उनको स्पर्श करके बहने वाली वायु शरीर, मन और अंतराल को ऐसा उल्लास प्रदान करती है, जिनके सहारे मनोबल ऊँचा रहे और भावनाओं में उत्कृष्टता का अनुपात बढ़ा रहे। ऐसी परिस्थितियाँ आत्मिक प्रयोजनों की सफलता में बहुत सहायक सिद्ध होती हैं। उत्तराखंड की सभी नदियाँ आरोग्यवर्द्धक और मानसिक संतुलन बनाने वाला जल लेकर बहती हैं। शिखरों पर जमा हुआ हिम सूर्यताप से पिघलता है, जो पत्थर वाले क्षेत्रों में अपनी विशिष्टता अक्षुण्ण बनाए रखता है। आगे चलकर नगरों की गंदगी मिलने पर वह दूषित होता है, फिर भी अपनी शुद्धता को खोता नहीं। अस्तु यहाँ के नदी-निर्झरों द्वारा प्राप्त हुआ जल मलों के शोधन एवं बल अभिवर्द्धन में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होता है ॥ ३८-४५ ॥

नदीध्वेतासु गंगा तु मुख्येयं वर्ततेऽनघा।
जलमस्यामृतं दिव्यमाधिव्याधि विनाशकम् ॥ ४६ ॥
पुण्येनास्या जलेनात्र खनिजानामथापि च।
वन्यानामौषधीनां च मिश्रणं विपुलं मतम् ॥ ४७ ॥
औषधं जाह्नवीतोयमतएव तदुच्यते।
वैशिष्ट्यं च निजं नूनं क्षेत्रजं भवति स्वतः ॥ ४८ ॥
गुणास्तदनुपाशच तत्र जातेषु निश्चितम्।
पदार्थेषु समेष्वेव जायन्ते च यथा तथा ॥ ४९ ॥
गंगावतरणरूपे च गंगायाः परमाद्भुतम्।
कृतं वैज्ञानिकं चेत्थं विद्वद्भिस्तु विवेचनम् ॥ ५० ॥
मरीचिरूपं यच्चात्र जलं तत्पूर्णरूपतः।
निर्दोषं कथितं तेजो जले परिणतं भवेत् ॥ ५१ ॥
अंतरिक्षस्थितेष्वेतत्तेजो युक्तेषु संभूतम्।
जलमाकाशगंगादिपिण्डेष्वस्ति तु यच्छुभम् ॥ ५२ ॥
उत्तरस्थे ध्रुवक्षेत्रे याति सूर्यास्त्रसंगतेः।
विष्णुपादाब्जसंभूता सोच्यते ह्यतएव तु ॥ ५३ ॥
उत्तरस्थं ध्रुवक्षेत्रं नाभिरस्य च मन्यताम्।
ब्रह्मांडस्यात एवोक्तं सैति ब्रह्मकमंडलौ ॥ ५४ ॥
पतत्येषाऽन्तरिक्षेऽतो जटायां शंकरस्य तु।
अंतरिक्षं जटा तस्य व्योमकेशस्य सम्मतम् ॥ ५५ ॥
पतत्येवं हिमाद्रौ सा हिमरूपतया सदा।
गोमुखादथनिर्याति प्रत्यक्षं वारितां गता ॥ ५६ ॥
मरीचिजलदिव्यत्व कारणादेव निर्मले।
गंगाजले समायान्ति नैव विकृतयोऽशुभाः ॥ ५७ ॥
औषधं जाह्नवीतोयं यतोऽस्याः सलिलस्य तु।
मुख्यं स्रोतोऽन्तरिक्षेऽस्ति न पृथिव्यां तु कुत्रचित् ॥ ५८ ॥
पार्थिवेषु पदार्थेषु प्रायो विकृतयः सदा।
तत्कालं हि समायान्ति यातयामं तदुच्यते ॥ ५९ ॥
गंगाजलं तु तदिव्यमपवादतयाऽस्य तु।

विद्यते कारणं चात्र वर्तते चेदमेव हि ॥ ६० ॥

टीका—गंगा इन सभी नदियों में प्रधान है। उसका जल आधि-व्याधियों का निवारण करने वाला माना गया है, उसके साथ दिव्य वनौषधियों तथा खनिजों की उपयोगी मात्रा घुली रहती है, अतएव वह औषधि रूप बन जाता है। हर क्षेत्र की अपनी विशेषता होती है, उसके अनुरूप ही वहाँ उत्पन्न होने वाले खाद्य पदार्थों के गुण रहते हैं। गंगावतरण में गंगा की अद्भुत वैज्ञानिक विवेचना विद्वान इस प्रकार बताते हैं। संसार में विद्यमान जलों में मरीचि-जल (किरण रूप में विद्यमान जल) पूर्ण निर्दोष माना गया है यही तेज जल रूप में परिणत होता है। आकाश में अनेक तेजस्वी पिंडों (आकाशगंगा आदि) में विद्यमान यह मरीचि जल उत्तरी ध्रुव में सूर्य की किरणों के संपर्क से पहुँचता है। यही गंगा का विष्णु (सूर्य) के चरणों (किरणों) से निकलकर ब्रह्म कमंडलु में जाना कहा गया है। उत्तरी ध्रुव इस अपने ब्रह्मांड की धुरी है, यही ब्रह्मा (ब्रह्मांड) का कमंडलु (धुरी या नाभि) है। वहाँ से वह (गंगा) अंतरिक्ष में गिरती है, अंतरिक्ष ही शिवजटा है, क्योंकि शिवजी को व्योमकेश भी कहते हैं। व्याम अर्थात् अंतरिक्ष जिनके केश अर्थात् बाल स्वरूप है। वहाँ से वह गंगा हिमालय पर घनीभूत बरफ बनकर गिरती है। तदंतर जल रूप में गोमुख से बहती हुई दीखती है। उसी मरीचि-जल की दिव्यता के कारण गंगाजल में सहसा विकृति नहीं आती है। चूँकि इसके जल का मुख्य स्रोत पृथ्वी में नहीं है अंतरिक्ष में है, इसीलिए यह औषध रूप में है। पार्थिव पदार्थों में तत्काल विकृतियाँ देखी जाती हैं, उसे बासी कहा जाता है, किंतु गंगाजल इसी कारण इसका अपवाद है ॥ ४६-६० ॥

हिमाद्रिवासिनो येषां वृक्षाणां ज्वालयन्ति ते।
दारूणि, भुञ्जते शाकफलकंदान्मुत्तमम् ॥ ६१ ॥
तेन नैव नृणामेवान्येषामपि शरीरिणाम्।
शरीरं चित्तमेवापि जायते सात्त्विकं परम् ॥ ६२ ॥
नंदनवनमालिङ्ग्य क्षेत्रजा वान्ति ये सदा।
वायवः प्राणसञ्चारमिव ते कुर्वते भृशम् ॥ ६३ ॥
विना श्रमं च ते ऽत्रत्या लाभं वातावृतेर्भृशम्।
वैशिष्ट्यस्य जनाः सर्वे प्राप्नुवन्ति निरंतरम् ॥ ६४ ॥
सर्वागसुंदरो नैवं सुयोगोऽन्यत्र लभ्यते।
अध्यात्ममार्गयोक्तारो वसन्त्यत्रैव सर्वदा ॥ ६५ ॥
अन्यत्राधिकालेन विपुलेन श्रमेण च।
लभन्ते यत्तदल्पेन कालेनात्राप्नुवन्ति च ॥ ६६ ॥
हिमाद्रिहृदयं चैतदुत्तराखंडमुत्तमम् ।
साधकेभ्यस्त्वसंख्येभ्यः साफल्यं प्रददात्यलम् ॥ ६७ ॥
अनुभवं तं समाश्रित्य वसन्त्यत्रैव साधकाः।
उत्साहश्चलितुं येषां विद्यतेऽत्र पथि स्वयम् ॥ ६८ ॥

६.१४ प्रज्ञोपनिषद्

अंतर्ग्रहानुदानं तदन्तर्लोकं तदुत्तमम्।

वरदानमिहाप्तुं चापेक्षया सुविधाकरम् ॥ ६९ ॥

टीका—हिमालय निवासी जिन वृक्षों की लकड़ियों को जलाते हैं, जो शाक, कंद, फल, अन्न खाते हैं, उससे मनुष्य के ही नहीं, अन्य प्राणियों के शरीर मन भी अपेक्षाकृत अधिक सात्त्विक रहते हैं। नंदन वन को स्पर्श करके बहने वाली इस क्षेत्र की हवाएँ प्राण-चेतना का संचार करती हैं और बिना परिश्रम के भी यहाँ के निवासी वातावरण की विशिष्टता का लाभ उठाए रहते हैं यह सर्वांग सुंदर सुयोग अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। अस्तु अध्यात्म मार्ग के प्रयोक्ता इसी भूमि में डेरा डालते हैं और अन्यत्र अधिक दिन तक कठोर श्रम करने पर जो उपलब्ध होता है, उसे वे स्वल्प समय और स्वल्प प्रयास में ही प्राप्त कर लेते हैं। हिमालय का हृदय कहा जाने वाला उत्तराखंड क्षेत्र अगणित साधकों को मूल्यवान सफलताएँ प्रदान करता रहा है। उस अनुभव के आधार पर जिन्हें इस मार्ग में उत्साह है, वे अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ डेरा डालते हैं। अंतर्ग्रही अनुदानों और अंतर्लोकिय वरदानों को उपलब्ध कराने में यहाँ अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधा है ॥ ६१-६९ ॥

अनुपेक्षस्तु सम्मर्दोऽकारणं विक्षिपत्यलम्।

दुर्गुणैश्च निजैर्दोषैः प्रभवन्ति च साधकान् ॥ ७० ॥

एतादृशानां सम्मर्दो जनानां याति तत्र च।

मनोरञ्जनमत्यर्थं विलासव्यवसाययोः ॥ ७१ ॥

साधनानि तु विद्यन्ते तानि कौतूहलस्य च।

क्षेत्रे हिमालयस्यात्र नैव किञ्चित्तु विद्यते ॥ ७२ ॥

शैत्याधिक्याद - थारोहारोहासुविधाविधेः।

विलाससाधनाल्पत्वान्नायान्यत्रानुरागिणः ॥ ७३ ॥

आयान्त्यपि न तिष्ठन्ति चिरमेतत्तु विद्यते।

स्वच्छता पूतताहेतोरध्यात्मन्युत्तमं क्रमे ॥ ७४ ॥

ये वसन्तीह सन्त्येते प्रायः सौम्याश्च सात्त्विकाः।

निर्धना अपि ते सन्ति सच्चरित्राश्च निश्छलाः ॥ ७५ ॥

हिंसका पशवोऽप्यत्र पक्षिणश्च भवन्ति तु।

अन्यत्रापेक्षया नूनमाक्रांतारोऽल्परूपतः ॥ ७६ ॥

मनुष्यैः सह तेषां च कादाचित्को विलोक्यते।

जनेर्दुर्व्यवहारस्तु प्रसंगैः कैश्चिदेव तु ॥ ७७ ॥

साधका निर्भयं तेषां मध्ये स्वदैनिकं क्रमम्।

निर्वहन्ति जनाः सन्ति संकुलक्षेत्रवासिनः ॥ ७८ ॥

छलिनो व्यसनासक्ता आक्रांतारोऽथ दुर्धियः।

दुर्गुणैकरताः शांतमेकान्तमिदमुच्यते ॥ ७९ ॥

टीका—निरर्थक भीड़ अकारण विक्षेप करती है। अपने दोष दुर्गुणों का प्रभाव साधकों पर छोड़ती है। ऐसे लोग वहाँ अधिक संख्या में पहुँचते हैं, जहाँ विलास-व्यवसाय के

मनोरंजन कौतूहल के साधन अधिक रहते हैं। हिमालय क्षेत्र में वैसा कुछ है नहीं। शीत की अधिकता उतार-चढ़ाव की असुविधा, विलास-साधनों की न्यूनता के कारण संसार प्रवृत्ति के लोग यहाँ पहुँच नहीं पाते, पहुँचते हैं तो रुकते नहीं। यह पवित्रता और स्वच्छता दोनों ही दृष्टि से अध्यात्म प्रयोजनों के लिए अतीव उत्तम है। जो निवास करते हैं, उनमें से अधिकांश सौम्य-सात्त्विक प्रवृत्ति के होते हैं। निर्धन होने पर भी उन्हें निष्कपट सदाचारी पाया जाता है। यहाँ तक कि हिंसक पशु-पक्षी तक अन्यत्र की तुलना में कम आक्रामक पाए जाते हैं। मनुष्यों के साथ तो उनका दुर्व्यवहार कभी कदाचित विशेष प्रसंगों में ही देखा जाता है। साधक प्रकृति के लोग उनके बीच निर्भय होकर निर्वाह कर लेते हैं। घिच-पिच क्षेत्रों का जन-समुदाय, दुर्व्यसनी, दुर्गुणी, छली और आक्रामक पाया जाता है, यह क्षेत्र एकांत-शांत है ॥ ७०-७९ ॥

संकुलक्षेत्रजा - वासः साधनादृष्टितः सदा।

चित्तोद्वेगकरो दृष्टः प्रयासोऽनर्थकृत्तथा ॥ ८० ॥

अस्ति प्रयोगशालेव संपन्ना साधनैः स्वयम्।

हिमाद्रिः शक्तयोऽसंख्या दृश्यन्ते स्फुरितास्तु ताः ॥ ८१ ॥

एतत्संपर्कतश्चात्र साधकानां वपुः स्वयम्।

स्थूलं सूक्ष्मं प्रसुप्ताः स्वाः शक्तीरुद्बोद्धुमर्हति ॥ ८२ ॥

मानवस्य शरीरं तु ब्रह्मांडानुकृतिः स्वयम्।

सर्वोपकरणान्यत्र विद्यन्ते संस्थितानि तु ॥ ८३ ॥

उद्बुद्धानि विधायान् यानि योक्तं च संभवेत्।

आत्मानं प्रकृतेः शक्त्या यावदावश्यकं तथा ॥ ८४ ॥

ग्रहीतुं धर्तुमेवाऽपि संभवेत्तावदेव च।

उपलब्धमिहास्त्येव पूर्णा संभावनाऽपि सा ॥ ८५ ॥

एतदर्थं प्रसुप्तं च बोद्धुमंतर्गतं समैः।

साधकैर्जागृतं कर्तुमिष्यते सर्वदैव तु ॥ ८६ ॥

प्रक्रिया साधनाभिश्च सिद्धिः सा लभ्यते जनैः।

आदातुमपि शक्तीस्ता दिव्यास्तासां दयाप्तये ॥ ८७ ॥

विधिरेक इहास्त्येष प्रसुप्तां दिव्यतां निजाम्।

कुर्याज्जनः साधकोऽत्र तामुद्बुद्धां तु केवलम् ॥ ८८ ॥

टीका—साधना की दृष्टि से घिच-पिच स्थानों में निवास मन को उद्विग्न करने वाला और प्रयास को असफल बनाने वाला देखा गया है। हिमालय स्वयं एक साधन संपन्न प्रयोगशाला है। उससे प्रकृति की अगणित शक्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक सजग पाई जाती हैं। इनके संपर्क में साधकों के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जगाने में अधिक सफल रहते हैं। मनुष्य का काय पिंड इस ब्रह्मांड की अनुकृति है। उसमें वे सभी उपकरण समाहित हैं, जिन्हें जागृत और सक्षम बना लेने पर प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों के साथ अपने को जोड़ा जा सकता है और धारण किया जा सकता है,

उसे उपलब्ध करने की पूरी संभावना रहती है। इसके लिए अंतर्निहित प्रसुप्त को जगाना पड़ता है। इसी प्रक्रिया को साधना से सिद्धि की उपलब्धि कही जाती है। दैवी शक्तियों को आकर्षित करने और उनकी अनुकंपा पाने के लिए एक ही उपाय है साधक का अपनी प्रसुप्त दिव्यता को जगा लेना ॥ ८०-८८ ॥

योगाभ्यासे च चैतन्यं व्यक्तेः सम्बद्ध्यते तथा।
ब्रह्मचेतनया प्रोक्ता विद्वद्भिस्तु समष्टिगा ॥ ८९ ॥
संबंधे चोभयोर्जाते दानादाने क्रमात्ततः।
जायेते समतां जीवशक्तिरेति परात्मनः ॥ ९० ॥
आधारमिमांश्रित्य दृष्टाः सिद्धा नरा इह।
दिव्यतामर्जयन्तस्ते कुर्वन्तो देवभूमिकाम् ॥ ९१ ॥
चुंबकत्वस्य यस्यैवानिवार्यत्वमपेक्ष्यते।
आकर्षणाय पात्रत्वधृतयेऽपेक्ष्यते च यत् ॥ ९२ ॥
तपसा प्राप्यते तत्तु तपश्चात्मपरिष्कृतिः।
तितिक्षाग्नौ प्रतप्तस्य प्रखरत्वमदोषता ॥ ९३ ॥
तपश्चर्या न वै देवान् बाध्यान् कर्तुं दुराग्रहः।
विद्यतेऽपि तु चैतन्याच्छादिकानां तु वर्तते ॥ ९४ ॥
पशुजन्यप्रवृत्तीनां पुरुषार्थेन भूयसा।
समूलोनमूलनं येन स्वरूपं स्वं प्रपद्यते ॥ ९५ ॥
अस्मिन्ग्नौ नरस्तप्त्वा स्वर्णकान्तिं भजत्यलम्।
जायते प्रतिभावांश्च लभते परिपक्वताम् ॥ ९६ ॥

टीका—योगाभ्यास में व्यक्ति की चेतना को समष्टिगत ब्रह्मचेतना के साथ जोड़ा जाता है। दोनों के मिलन पर ऐसा आदान-प्रदान चल पड़ता है, जिसमें जीवात्मा की सामर्थ्य परमात्मा के समतुल्य बन सके। सिद्ध पुरुष इसी आधार पर दिव्यता अर्जित करते और देवताओं जैसी भूमिका संपन्न करते देखे गए हैं। आकर्षण के लिए जिसे चुंबकत्व की आवश्यकता है धारण के लिए पात्रता की आवश्यकता है उसे तपश्चर्या द्वारा प्राप्त किया जाता है। तप का तात्पर्य है आत्मशोधन। अपने आपको तितिक्षा की अग्नि में तपाकर निर्मल और प्रखर बना लेना। तपश्चर्या देवताओं को बाधित करने का दुराग्रह नहीं है, वरन् चेतना पर चढ़ी हुई पशु-प्रवृत्तियों को पुरुषार्थ पूर्वक उखाड़ना है, जिससे साधक अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करते हैं। इस अग्नि में तपने से मनुष्य सोने के समान कांतिवान और प्रतिभावान बनता है। परिपक्वता इसी आधार पर आती है ॥ ८९-९६ ॥

यस्यां कष्टानि सह्यन्ते तथैव दिनचर्यया।
रुद्धते पौरुषं शौर्यं तथैतच्च मनोबलम् ॥ ९७ ॥
आसाद्येमा विभूतीश्च तापसाः शक्तिशालिनः।
जायंते सुविधासक्ता निःसत्त्वाश्च विलासिनः ॥ ९८ ॥
न ते कर्तुं समर्थाश्च शौर्यसाहससंयुतम्।

पराक्रमं, यतो लभ्यं साफल्यं भौतिकस्तरम् ॥ ९९ ॥
भवेदध्यात्मगाः स्युश्च हस्तगास्ता विभूतयः।
जायते तपसा चास्य दौर्बल्यस्य निराकृतिः ॥ १०० ॥
संयमैकधना ये तु विक्रमैकरसा नराः।
अनौचित्येन युद्धयन्ते ये ते शूरास्तपस्विनः ॥ १०१ ॥
तप एव च विश्वेऽस्मिन् बलं प्रोक्तं परं महत्।
यथा व्यायामशालायां पूर्णायां साधनैर्नरैः ॥ १०२ ॥
शिक्षकस्योपयुक्तस्य वातावरणकस्य च।
साहाय्येन क्रमान्मल्लो जायते दृढविग्रहः ॥ १०३ ॥
तथा विशेषतास्वस्य हिमाद्रेयं वसन्ति तु।
प्राप्यन्ते तैर्महत्स्यताः सिद्धयोऽध्यात्मसंभवा ॥ १०४ ॥
प्रतिबंधो न तस्मिंस्तु यद्यपि क्वापि विद्यते।

स्थितिर्न तु सा तद्वत्सफलं स्यादृतौ कृतम् ॥ १०५ ॥
टीका—कष्ट सहिष्णु जीवनचर्या से मनोबल और शौर्य-पराक्रम बढ़ता है। इन्हीं विभूतियों को अर्जित करने के कारण तपस्वी लोग परम शक्तिशाली बनते हैं। सुविधाओं से खेलने वाले विलासी लोग भीतर से खोखले होते हैं और वे शौर्य-साहस भरा वैसा पराक्रम कर नहीं पाते, जिससे भौतिक स्तर की सफलताएँ तथा आत्मिक स्तर की विभूतियाँ हस्तगत हो सकें। इस दुर्बलता का निराकरण तपश्चर्या द्वारा होता है। संयमी, पराक्रमी एवं अनौचित्य से लड़ने वाले शूरवीरों को तपस्वी कहते हैं। तप ही इस संसार का सबसे बड़ा बल है। जिस प्रकार साधन-सम्पन्न व्यायामशाला में-उपयुक्त शिक्षक एवं वातावरण की सहायता से मनुष्य एक सधा हुआ पहलवान बनता है। उसी प्रकार हिमालय की विशेषताओं में रहते हुए अध्यात्म क्षेत्र की सिद्धियाँ अधिक अच्छी तरह प्राप्त की जा सकती हैं। यों उस उर्पाजन पर प्रतिबन्ध कहीं भी नहीं है, परन्तु यहाँ वही स्थिति है, जैसे ऋतु के अनुकूल किये गये कार्य सदा सफल होते हैं ॥ ९७-१०५ ॥

तापसा एव जायन्ते योगिनो नैव निर्गताः।
जायन्ते ते विकारा वा विलासा विविधा मलाः ॥ १०६ ॥
यावत्तावन्न जीवस्य सिद्ध्येदत्र परात्मना।
योगः सज्जायते येन सच्चिदानन्दरूपता ॥ १०७ ॥
अध्यात्मसाधकैर्भाव्यं प्रथमे चरणे त्विह।
तापसैरथ कर्त्तव्यो योगाभ्यासोऽपरे क्रमे ॥ १०८ ॥
समन्विततया चोभौ पादन्यासौ तु कुर्वता।
सम्भाव्या लक्ष्यसम्प्राप्तिः पूर्णतायास्ततः स्वतः ॥ १०९ ॥
तत्र चाद्यतनायां स यात्रायां नारदो मुनिः।
दर्शयामास सर्वं तन्मण्डलं तु मनीषिणाम् ॥ ११० ॥
स्थानानि दिव्यरूपाणि बहून्येवं विधाने तु।
ऋषिभिर्भ्यत्र योगस्य तपसश्च कृतः श्रमः ॥ १११ ॥
तेषां नामानि चैतिह्यं बोधयन्नारदो मुनिः।

तथ्यमेतदवोचच्च मानवः कथमेष तु ॥११२॥

वपुः प्रयोगशालायां तपोयोगसमुद्भवम् ।

प्रखरत्वं समुत्पाद्य देवभूतियुतो भवेत् ॥११३॥

कार्यं तच्च हिमाद्रेस्तु क्षेत्रे वासेन तत्कियत् ।

सरलं जायते नृणां साधनाक्षेत्रगामिनाम् ॥११४॥

टीका—तपस्वी ही योगी बनते हैं। विलास और विकार की गंदगी जब तक बुहारी नहीं जाती, तब तक आत्मा और परमात्मा का योग सधता नहीं, जिससे सच्चिदानंदरूपता की उपलब्धि होती है। अस्तु, अध्यात्म साधकों को प्रथम चरण-तपस्वी बनने का और दूसरा चरण योगाभ्यास करने का उठाना होता है। इसी प्रकार दोनों कदम समन्वित रूप से उठाते हुए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचना संभव होता है। आज की यात्रा में नारद जी ने मनीषियों की मंडली को ऐसे अनेक स्थान दिखाए, जिनमें ऋषियों ने तपश्चर्या और योग-साधना का प्रबल पुरुषार्थ किया। उनका नाम जताते, इतिहास बताते हुए यह तथ्य समझाया कि काया की प्रयोगशाला में योग-तप की प्रखरता उत्पन्न करके मनुष्य किस प्रकार देवोपम विभूतियों से संपन्न हो सकता है। वह कार्य हिमालय के क्षेत्र में निवास करने पर साधक मनुष्यों को कितना सरल पड़ता है ॥ १०६-११४ ॥

विना शैथिल्यमेवाद्य यात्रेयं पूर्णतां गता ।

योजनाबद्धरूपेण विधाय भ्रमणं तथा ॥ ११५ ॥

दृष्ट्वा सर्वमपि स्वान्तं जातं नैव निरुत्सुकम् ।

अभूदुत्कण्ठितं भूयो ज्ञातुं बोद्धुं मनः पुनः ॥ ११६ ॥

परं विवशता तत्र जाता सूर्यो यतोऽगमत् ।

अस्ताचलं विरामोऽतः प्रवासस्य कृतः समैः ॥ ११७ ॥

देवप्रयागो रामस्य भगवतस्तु तपः स्थलम् ।

लक्ष्मणस्य च कुब्जाम्रतपोभूमेरदूरतः ॥ ११८ ॥

भरतस्यापि विज्ञाय विस्मिताः सर्व एव ते ।

उत्तराखंडमाहात्म्यं मेनिरे परमाद्भुतम् ॥ ११९ ॥

उपयुक्तं नवं स्थानमन्विष्याथ विधाय च ।

विश्रमस्य व्यवस्थां तु निशां तेऽगमन् सुखम् ॥ १२० ॥

टीका—आज की लंबी यात्रा बिना थके पूरी हो गई। योजना भ्रमण कर लेने और बहुत कुछ देख लेने पर भी मन भरा नहीं। अधिक जानने-देखने की उत्कंठा बनी रही, किंतु विवशता थी। सूर्य अस्त हो जाने पर प्रवास को विराम देना पड़ा। देवप्रयाग भगवान राम की तथा (ऋषिकेश से) कुब्जाम्र तीर्थ से थोड़ी दूरी पर स्थित लक्ष्मण झूला-लक्ष्मण की व पास ही भरत की तपस्थली है यह जानकर सभी को आश्चर्य हुआ व उन्होंने उत्तराखंड के माहात्म्य का अद्भुत अनुभव किया। अंततः उपयुक्त स्थान खोजकर सभी ने विश्रामव्यवस्था बनाई और सुखपूर्वक रात्रि बिताई ॥ ११५-१२० ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीताप्रकरणे देवसंस्कृतिखंडे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युग दर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,

महर्षिनारद - प्रतिपादिते हिमाद्रिहृदयप्रकरणे इति प्रकरणो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥